VOL- VII ISSUE- IV APRIL 2020 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 6.293 ISSN 2349-638x

' पचपन खंभे लाल दीवारें ' उपन्यास में व्यक्त आधुनिक बोध '

प्रो.डॉ.बालाजी श्रीपती भुरे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
शिवजागृति वरिष्ठ महाविद्यालय,
नलेगाँव ता.चाकुर जि.लातूर

आधुनिकता का संबंध वर्तमान की उस चेतना के साथ है, जिसमें विकास के साथ-साथ जीवन में आए हुए परिवर्तन को भी देखा जा सकता है। इस परिवर्तन में मनुष्य को संघर्ष करते-करते जीवन में सफलताओं और विफलताओं का भी अनुभव आता है। कभी वह विविध समस्याओं से हारकर घुटन की स्थिति में जीता है, तो कभी उसका सामना करते हुए उसमें सफलता पाकर सुखमय जीवन भी जीता है। इसके मूल में आधुनिकता ही है, जिसमें मनुष्य की समग्र जीवन जीने की लालसा निहित होती है। अतः मेरी दृष्टि से " आधुनिकता से तात्पर्य वर्तमान से चिंतित होकर या भविष्य के सुनहरे सपनों से सम्मोहित होकर अपने ही अतीत से पलायन की प्रक्रिया न होकर विविध मूल्यों के साथ संघर्ष करते हुए एक समग्र जीवन जीने का प्रयास है।" अर्थात आधुनिकता स्थूलता के प्रति सूक्ष्म का दृष्टिकोण है,जो समय सापेक्ष है। इस दृष्टि से प्रत्येक काल अपने आप में आधुनिक होता है। जैसे- आरंभिक काल अपने समय में आधुनिक ही था और आज का युग भी अपने समय में आधुनिक ही है।

आधुनिकता यह एक ऐसी मानसिकता है, जो किसी भी मूल धारणा को सहजता से न स्वीकारते हुए पहले उसे जांचने पर अधिक बल देती है। यह जांच विज्ञानपरक या तर्काधिष्ठीत होने के कारण आज सभी क्षेत्रों में तीव्र गति से परिवर्तन आते जा रहा है। लेकिन मजे की बात यह है कि जहां एक ओर ज्ञान-विज्ञान के कारण परंपरागत रुढी-परंपराओं, अंधश्रद्धा एवं अंधविश्वासों से निकलकर मनुष्य जीवन के यथार्थ बोध के साथ जुड़ गया है, वहाँ दूसरी ओर इन्हीं कारणों से वह आज अपनी पारंपारिक परम्पराओं, सांस्कृतिक आदर्शों एवं नैतिकता की धरोहर से कटते भी जा रहा है। जहां परिवार का पालन-पोषण करने की जिम्मेदारियाँ बेटों की जगह बेटियां ले रही हैं, वहां बेटियों को लेकर माता- पिता का समतावाला दृष्टिकोण भी कहीं-कहीं चरमराते जा रहा है। जहाँ युवक और युवतियों के बीच अपने जीवनसाथी के चयन की स्वतंत्रता आ गई है, वहाँ स्वतंत्र जीवन जीने की लालसा ने दोनों को जकड़ लिया हैं। जहाँ एक ओर परंपराओं का निर्वाहन किया जा रहा है, वहां दूसरी ओर पारिवारिक मूल्यो में टूटन भी आ रही है।

आधुनिक काल में भले ही नारी का कामकाजी रुप सामने आया हो, लेकिन उसके इस कामकाजी रूप में भी परिवर्तन आता हुआ दिखाई दे रहा है। जहाँ अन्याय के खिलाफ लड़ने वाली नारी है, वहां अन्याय को सहनेवाली नारियाँ भी हैं। पुरुष हो या नारी आज उनके आचार-विचारों में जबरदस्त परिवर्तन आते जा रहा हैं। खासकर भारतीय समाज में स्त्री विषयक पुरुषों का दृष्टिकोण दिन-ब-दिन

बदलते जा रहा है। जहां चार दीवारों में कैद नारी पुरुषों के अन्याय-अत्याचार को सहना अपना भाग्य मानती थी, वहाँ आज वह पढ़-लिखकर पुरुषों के बराबर अपने अधिकार एवं कर्तव्य को पूर्ण करने में लगी है, बावजूद इसीके समाज की स्त्री विषयक मानसिकता में अपेक्षाकृत परिवर्तन नहीं आ रहा है। इसी का चिंतन हिंदी के कई साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है जिनमें से उषा प्रियंवदा एक हैं।' पचपन खंभे लाल दीवारें ' उपन्यास में उषा प्रियंवदा जी ने सुषमा, माँ, वकीलबाबू, नारायण, कृष्णा मौसी, नील कस्यप, मीनाक्षी, मिस शास्त्री, भौंरी आदि विविध पात्रों को संजोया है। उपन्यास के ये सारे पात्र वर्तमान समय के,अपने आसपास के, अपने और परिचित से लगते हैं। इन पात्रों के क्रियाकलापों से, उनके बीच हुए संवादों से तथा विविध नियोजित घटनाओं के संयोजन से लेखिका ने आधुनिक भाव-बोध को प्रस्तुत करने का प्रयास 'पचपन खंभे लाल दीवारें' इस उपन्यास में किया है, जिसे हम यहां निम्नलिखित बिंदुओं के द्वारा विश्लेषित कर सकते हैं। जैसे-

परिवार की जिम्मेदारी निभानेवाली नारी :-

भारतीय समाज एवं साहित्य का अध्ययन करें, तो यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि नारी को हमेशा किसी न किसी पद्धति से पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता था। लेकिन आधुनिक काल में कानून एवं शिक्षा के कारण नारी के जीवन और उसकी सोच में जबरदस्त परिवर्तन आने लगा है। पहले परिवार की या समाज की अवधारणा थी कि परिवार की जिम्मेदारियों का वहन करने लायक केवल लड़का ही होता है और इसी कारण लड़का-लड़की भेद घर-घर तथा समाज में चलता था। लेकिन लड़के के कंधों पर जिम्मेदारी होनी चाहिए वाला यह मिथक अब टूटने लगा है। आज के समाज में ऐसे कई परिवार हैं जिस परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी लड़कियाँ बखूबी से उठा रही है। उषा प्रियंवदा जी ने इस उपन्यास में सुषमा के माध्यम से यह उदाहरण को प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका सुषमा पढ़ी लिखी होने के कारण परिवार की संपूर्ण जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाती है। जिम्मेदारियों के सामने उसे अपनी व्यक्तिगत सपने कुछ भी नहीं लगते। अपने सपनों को तिलांजलि देकर पारिवारिक जिम्मेदारी को अपना कर्तव्य समझते हुए वह एक बेटे के समान अपने परिवार का भरण-पोषण करने लगती है। उसका अपनी कृष्णा मौसी के पूछनेपर अपनी शादी की बात को टालते हुए यह कहना कि," अगर मैं सबसे बड़ा लड़का होती, तो क्या न करती ? उसी तरह मैं अब भी करती हूँ। इन लोगों के लिए कुछ करके मन में बड़ा संतोष-सा होता है। अपने लिए तो सभी करते हैं, छोटे भाई-बहनों को कुछ कर सकूँ, उस योग्य भी तो पिता जी ने ही बनाया है।"1 यह एक आत्मनिर्भर और पारिवारिक जिम्मेदारी को निभाने वाली नारी को व्यक्त करता है।

परम्पराओं का निर्वाहन :-

इस उपन्यास में उषा प्रियंवदा जी ने सामाजिक परंपराओं का भी ख्याल रखा है। जैसे- बच्चे के नामकरण का समारोह हो, विवाह के लिए लड़की दिखाने की रस्म हो या दहेज की परम्परा हो। ऐसी परंपराओं का लेखिका ने यहाँ निर्वाहन किया है। उपन्यास में वकील बाबू के पोते का नामकरण दिखाया गया है और उस नामकरण समारोह के उत्सव में सुषमा और उसकी मां दोनों भी जाते हैं " सुषमा ने बच्चे के लिए एक चांदी का झुनझुना खरीद लिया। वकील साहब के घर बढ़ी चहल-पहल थी। दो लड़कियों के बाद यह पहला पोता हुआ था॥"2 नारायण की बहन प्रभा ने बताया कि नारायण दादा तो इसका नाम अमित रखना चाहते हैं, अम्मा ने

आनंद रखा है। परंपराओं के निर्वाह का दूसरा प्रसंग निरुपमा के विवाह प्रसंग का है। सुभाष नामक लड़के को अपनी लड़की निरूपमा को दिखाने के लिए माँ अपनी बडी बेटी सुषमा के पास दिल्ली आ जाती है। वहीं पर लड़के और उसके परिवार वालों को बुलाया जाता है और लड़की दिखाने की रस्म पूरी कर दी जाती है। तीसरा प्रसंग दहेज की परंपरा का है । विवाह में दहेज देने की और लेने की यह बूरी परंपरा आज भी चल रही है। लोग आज भी किसी न किसी पद्धति से इस परंपरा का निर्वाहन करते दिखाई दे रहे हैं। उपन्यास में जहाँ सुषमा नारायण से प्रेम करती थी, सुषमा की माँ ने नारायण के पिता वकील बाबू से नारायण और सुषमा के विवाह की बात भी की थी, लेकिन सुषमा एक गरीब परिवार की लड़की थी। वकील बाबू अपने बेटे " नारायण की शादी बड़े ऊँचे घर में करना चाहते थे। उनकी पत्नी ने सुषमा के लिए बहुत हठ किया; पर वकील साहब ने नारायण की शादी कहीं और तय कर दी। सुना, नारायण को भी वह लड़की पसंद थी। सुना, उस लड़की के पिता सिविल सर्जन थे और दहेज से घर-आंगन भर गया था।"3 यहां वकील बाबू को सुषमा जैसी गुण संपन्न लड़की की अपेक्षा दहेज और अमीर घर की बहू महत्वपूर्ण लगी। उनके लिए तो प्रेम की अपेक्षा दहेज ही अधिक महत्वपूर्ण था।

पारिवारिक मूल्यों की टूटन :-

आज पारिवारिक मूल्य टूटते जा रहे हैं। टूटते पारिवारिक मूल्यों की यदि बात की जाए, तो परिवार के माता पिता को जहां अपने बच्चों की परवरिश करनी चाहिए वहां इस उपन्यास में बेटी सुषमा परिवार का भरण पोषण कर रही है। इस उपन्यास में पिता कमा नहीं सकते, वे विवश हैं और माता भी कमाती नहीं ऐसे हालात में परिवार की सारी जिम्मेदारी बेटों की बजाय बेटी सुषमा उठाती है। परिवार की पूरी जिम्मेदारी का वहन करते-करते उसने अपनी शादी तक नहीं की। कृष्णा मौसी के यह कहने पर कि सुषमा ! भाई-बहन किसी के नहीं होते, तू अपने बारे में तो कभी कबार सोचा कर। आज की दुनिया में कौन किसका होता है ? इसका उत्तर देते हुए सुषमा का यह कहना कि," इन सब को भी तो मदद की जरूरत है मौसी ! पिता जी को पेंशन मिलती ही कितनी है ? उसमें दो वक्त दाल- रोटी भी न चले। मैं भी अगर न करूँ तो किसके आगे हाथ फैलाएँगे ? लड़कों को पढ़ाना है ही, सड़क पर तो आवारा घूमने नहीं दिया जाएगा"4 यह परिवार की आर्थिक विवशता और उसमें पारिवारिक जिम्मेदारी के प्रति माता-पिता की उपेक्षा को दर्शाता है। बात यहां तक नहीं रुकती जब कृष्णा मौसी अपनी बहन को यह समझाते हुए कहती है कि सुषमा की शादी नहीं करोगी क्या ? क्या उसे कुंवारी ही रखोगी ? उसको छोड़कर तुम उसकी छोटी बहन निरूपमा की शादी को लेकर सोच रही हो। तब मां का कृष्णा मौसी को दिया गया यह उत्तर कि," तुम जानो कृष्णा, सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात नहीं रही। इतना पढ़ लिख रही, अच्छी नौकरी है और अब तो क्या कहने हैं, होस्टल में वार्डन भी बननेवाली है। बँगला और चपरासी अलग से मिलेगा, बताओ, इसके जोड का लड़का मिलना तो मुश्किल है। तुम्हारे जीजा तो कहते हैं कि लड़की स्यानी है, जिससे मन मिले, उसी से कर ले। हम खुशी-खुशी शादी में शामिल हो जाएँगे।"5 यहाँ माता- पिता का अपनी बेटी सुषमा के विवाह के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाई देता है। यहाँ सवाल यह उठता है कि जिसके कंधे पर परिवार की जिम्मेदारी है वह सुषमा परिवार की सबसे बड़ी बेटी होकर भी माँ उसकी शादी की अपेक्षा उससे छोटी बेटी निरुपमा की शादी को लेकर क्यों सोचती है ? इसका उत्तर हमें तब

मिलता है जब सुषमा अपने पिता को लेकर यह सोचती है कि," यदि पिता जी चाहते तो क्या उसका विवाह नहीं कर सकते थे। लोग लाख प्रयत्न कर बेटी के ब्याह का सामान जुटाते हैं। क्या उसीके पिता अनोखे थे ? बात असल यह थी कि उन्होंने यह चाहा ही नहीं कि सुषमा की शादी हो ... उनके रिटायर होने में तब केवल तीन साल बाकी थे और बच्चे छोटे थे। उस समय सुषमा की शादी करने से उनकी सारी आर्थिक व्यवस्था गड़बड़ हो जाती।"6 यहाँ सुषमा के पिता की आर्थिक विवशता और स्वार्थ भरी सोच हमारे सामने आती है। इन घटनाओं के माध्यम से उषा प्रियंवदा जी ने आधुनिक काल में किस प्रकार पारिवारिक मूल्य टूटते जा रहे हैं इसे दर्शाने का प्रयास किया है।

दो पीढ़ियों का वैचारिक संघर्ष :-

पीढ़ी दर पीढ़ी विचारों और आचारों में परिवर्तन आते जाता है। दोनों पीढ़ियों के विचारों में समन्वय होना ही समाज के विकास के लिए आवश्यक होता है, जहाँ पुरानी पीढ़ी अपने विचारों पर और नई पीढ़ी अपने विचारों पर अडिग रहने लगती है तब विचार भिन्नता के कारण दो पीढ़ियों के विचारों में टकराव उत्पन्न होने लगता है। इसका मतलब सभी पुराने विचार निरर्थक और सभी नए विचार सार्थक नहीं होते। इसीलिए दोनों के बीच समन्वय होना आवश्यक होता है। उषा प्रियंवदा जी ने अपने इस उपन्यास में दो पीढ़ियों का वैचारिक संघर्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उपन्यास में माँ और पिताजी पुराने विचारों को लेकर चलने वाले हैं, तो सुषमा, मीनाक्षी, नील आदि पात्र आधुनिक विचारों को लेकर चलने वाले हैं। पुरानी पीढ़ी के विचारों को लेकर चलने वाली कृष्णा मौसी सुषमा के विवाह को लेकर चिंतित है। वह अपनी बहन से पूछती है कि वकील बाबू के लड़के नारायण के साथ सुषमा की शादी की बात हुई क्या? तब तुरंत सुषमा का यह कहना कि, "आप भी, मौसी, किस पचड़े को ले बैठीं। जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम हैं, सिर्फ विवाह ही तो नहीं। और देशों में देखिए, बिना शादी किए ही औरतें कैसे मजे में रहती हैं।"7 यह सुषमा की स्वच्छंदतावादी जीवन जीनेवाले आधुनिक विचारों को व्यक्त करता है। जहाँ सुषमा नौकरी करते करते अपने परिवार के सदस्यों को सभी सुविधाएँ देना चाहती है जिसकी उन्हें आवश्यकता है, तो वहाँ उसकी माँ का यह कहना कि," तुम बहुत फिजूलखर्च होती जा रही हो। जरा हाथ दबाकर खर्च किया करो। नीरू की शादी भी तो करनी है।"8 यह माँ की उस पारंपरिक प्रवृत्ति को व्यक्त करता है, जिसमें अपनी आवश्यकताओं को दबाकर पैसों की बचत की जाती थी। इस प्रकार पुरानी और नई पीढ़ी के लोगों के विचारों में आज संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो रही है। इसे उपन्यासकार उषा प्रियंवदा जी ने इन पात्रों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है।

स्वाभिमानी नारी :-

भारत का इतिहास देखें तो जहाँ सदियों से नारी पुरुषों का अन्याय अत्याचार सहती आयी है, हर समय पुरुषों ने नारी के स्वाभिमान हो अपने अहंकार तले कुचला दिया था, वहाँ आज आधुनिक शिक्षा एवं कानून की सुरक्षा के कारण नारी सतर्क हुई है। पढ़ लिख कर उसने हर क्षेत्र में अपने सफलता के कदम रखे हैं। वह स्वाभिमान के साथ जी रही है। इस उपन्यास में ऐसी एक नारी पात्र सुषमा है, जो भले ही निर्धन हो लेकिन स्वाभिमानी है। उसका यह कहना कि मेरे " जीवन में कभी-कभी ऐसे अवसर भी आए, जबकि मैं अपने शरीर के मोल से धन और आराम पा सकती थी। पर वह मैंने स्वीकार नहीं किया। एम. ए. करने के बाद मैंने एक प्राइवेट कॉलेज में नौकरी की। वहाँ के सेक्रेटरी नगर के पुराने

रईसों में थे। उन्होंने किस वस्तु का प्रलोभन नहीं दिया मुझे, पर मैंने वह नौकरी छोड़ दी।"9 तब माँ ने नाराज होकर कहा भी था कि अब बच्चों का क्या होगा ? पिताजी साल भर से बीमार थे और बिना वेतन के छुट्टी पर थे। लेकिन मुझे सेक्रेटरी द्वारा रखी गयी उस शर्त का मोल चुकाना ठीक नहीं लगा और मैंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया था । यह सुषमा की स्वाभिमानी वृति को व्यक्त करता है, जो समस्त नारी जाति की महिमा को मंडित करता है।

स्वच्छंद जीवन जीने की लालसा :-

आधुनिकता और बढ़ते हुए वैश्विकरण के कारण आज युवकों में स्वच्छंद जीवन जीने की प्रवृत्ति दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। इस प्रवृत्ति का आज हिंदी साहित्य पर भी प्रभाव पडा हुआ दिखाई दे रहा है। ' पचपन खम्भे लाल दीवारें ' इस उपन्यास में सुषमा भारतीय संस्कृति तथा नैतिक नियमों का पालन करती हुई दिखाई देती है। साथ-ही-साथ उसमें स्वतंत्र जीवन जीने की लालसा भी है। इसीलिए वह समाज की या परिवार की परवाह किए बिना नील कश्यप नामक युवक के साथ घूमती है, फिल्म देखने जाती है, होटल में कॉपी लेने के लिए जाती है, तो उसे अच्छा लगता है। नील से करीबी पाकर उसे लगता है कि नील से उसका परिचय बिल्कुल नया है और अनजाने, अनचीही भावनाएं, अनजान स्पर्श, दहलीज के उस पार उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उसका शरीर जैसे कसे हुए तारों के वाद्य की तरह था, उंगलियों की हल्की टकोर के लिए आकुल, आधीर। उसे नील का चेहरा बहुत कोमल, बहुत दिलकश लगने लगा। वह धीरे-धीरे नील के हाथ के नाखूनों पर उँगली फेरने लगी। उसका मन-ही-मन यह अनुभव करना कि," नील की बाँह जहाँ उसे छू रही थी, वहाँ कुछ गरमाई थी और सुषमा को वह स्पर्श बहुत प्रतीकात्मक लग उठा। उसने सोचा कि उस क्रूर, कठोर, अंधकारमय दुनिया में वह नील से ही कुछ सांत्वना पा सकती है। नील के स्पर्श में स्निग्धता है, उष्णता और आत्मीयता।"10 यह उसकी स्वच्छंद जीवन जीने की लालसा को व्यक्त करता है। इतना ही नहीं स्वाति नाम की अध्यापिका जब कुंवारी माँ बननेवाली है यह सुनकर उसे सहकार्य करनेवाली अध्यापिकाएँ और स्टाफ स्वाति को भला बुरा कहने लगता है। मिसेज पूरी का सुषमा को यह कहने पर कि सामाजिक मापदंडों का जो उल्लंघन करता है, उसे दंडित होना ही पड़ता है। सुषमा, मुझे स्वाति से बिल्कुल भी सहानुभूति नहीं है। यह सुनते ही सुषमा का उसे समझाते हुए यह कहना कि," आपके सामाजिक मापदंड यह कहते हैं कि आप सबके सामने किसी के व्यक्तिगत जीवन की धज्जियाँ उड़ा दीजिए ? हरेक का जीवन एक ऐसा अनुलंघनीय दुर्ग है जिसका अतिक्रमण करना किसी का अधिकार नहीं है।"11 यहाँ सुषमा का स्वाति का पक्ष लेना एक दृष्टि से स्वच्छंद जीवन जीने की प्रवृत्ति का समर्थन करने वाला विचार लगता है।

जीवन साथी के चयन की स्वतंत्रता :-

समाज में समानता का अधिकार पाकर चार दीवारों में कैद रहनेवाली नारी आज विकासरुपी आकाश में स्वच्छंद रूप से विहार करने लगी है। आज की नारी परंपरागत पद्धति से विवाह की बेदी पर खड़ी न रहकर वह अपना जीवन साथी स्वयं चुनने में सक्षम हो गई है। जीवन साथी के चयन को लेकर उषा प्रियंवदा जी ने अपने इस उपन्यास में एक स्वतंत्र चिंतन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उपन्यास की नायिका सुषमा अपने लिए योग्य जीवनसाथी का चयन करने में सफल नहीं होती उसके पीछे कारण है उसके परिवार की आर्थिक स्थिति। बावजूद इसके 19 वर्ष की आयु में सुषमा का अपने पड़ोसी वकील बाबू के बेटे नारायण के साथ

भावनात्मक संबंध जुड़ गया था। दोनों एक दूसरे को पसंद भी करते थे, दोनों के बीच गहरा प्रेम था। सुषमा की माँ ने वकील बाबू के सामने विवाह का प्रस्ताव भी रखा था। लेकिन वकील बाबू ने अपने बेटे का विवाह बड़े घर की बेटी के साथ करने के लालच में इस रिश्ते को ठुकरा दिया था। यहाँ जीवन साथी के चयन की स्वतंत्रता होने के बावजूद भी नारायण ने आपने पिता का विरोध नहीं किया और चुपचाप पिता की मर्जी के अनुसार उनके द्वारा इच्छित लड़की के साथ शादी की और सुषमा के मन को ठेस पहुंचाया। उसके बाद सुषमा ने विवाह का विचार अपने मन से निकाल दिया और वह पूरी तरह से अपनी नौकरी और पारिवारिक जिम्मेदारी निभाने में लग गई। ऐसे समय तैंतीस वर्ष की आयु में जब उसके जीवन में नील कश्यप नामक युवक खुशियों की हरियाली लेकर आता है, तब पुनः वह नील के साथ जुड़ जाती है। परिवार या समाज की परवाह किए बिना वह उसके साथ बाहर घूमने जाती है, फिल्म देखने जाती है और विवाह को लेकर सपने भी देखती है। लेकिन परिवार की जिम्मेदारियाँ और संस्कार उसके और नील के बीच दीवार बनकर खड़े हो जाते हैं और नील के साथ अपना रिश्ता तोड़ने के लिए वह विवश हो जाती है।

कामकाजी नारी में आया परिवर्तन :-

आधुनिक काल में नारी विकास की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है उसका कामकाजी नारी होना। आज नारी ने अपनी क्षमता को हर क्षेत्र में साबित किया है। वह अपने बलबूते पर स्वावलंबी जीवन जी रही है। इस उपन्यास में सुषमा, मीनाक्षी, मिस शास्त्री, मिसेज रायचौधरी, रोमा डेविड, स्वाति, आदि कामकाजी नारियाँ हैं,जो महाविद्यालय में अध्यापिका के रूप में कार्यरत हैं। भले ही कामकाजी नारी आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनी हो लेकिन इस स्वावलंबन के साथ-साथ उसमें दूसरों के प्रति षड्यंत्र करने की प्रवृत्ति भी आ रही है। इस उपन्यास की दृष्टि से देखा जाए,तो सुषमा और मीनाक्षी जैसी नारियाँ एक तरफ पूरी निष्ठा और ईमानदारी से अपनी नौकरी कर रही हैं। प्राइवेट कॉलेज में वहाँ के सेक्रेटरी द्वारा प्रलोभन देने के बावजूद भी सुषमा उसे स्वीकार नहीं करती। सुषमा अपना अध्यापन का कार्य पूरी निष्ठा और ईमानदारी से करती । सुषमा कक्षा में लड़कियों से बहुत तन्मयता से पढ़ाती थी। वह कभी क्लास में नोट्स नहीं लाती थी। शब्द शब्दों में जुड़ते जाते थे और वाक्य अबाध गति से चलते रहते थे। लड़कियों की कलम कागजों पर दौड़ती रहती और इतिहास में जीवन आ जाता। समय कैसे बीत जाता इसका आभास किसी को भी नहीं रहता। उसकी नौकरानी भौंरी भी पूरी ईमानदारी के साथ सुषमा के प्रति निष्ठा रखते हुए अपनी नौकरी करती है, तो दूसरी तरफ मिस शास्त्री, रोमा डेविड, मिसेज रायचौधरी जैसी अध्यापिकाएँ हैं, जो हर समय अपनी ही सहयोगी अध्यापिका सुषमा के खिलाफ षड्यंत्र रचाने में लगी रहती हैं। यहाँ तक कि उसे सुषमा का लेडीज होस्टल का वार्डन बनना ठीक नहीं लगता। इसीलिए सुषमा और नील के मिलने के अवसर का लाभ उठाते हुए वह सुषमा को बदनाम करने के लिए रोमा डेविड से कहती है कि," प्रिंसिपल तक रिपोर्ट पहुंच जाए तो बस काम बना समझो। सर्विस का तो कांट्रैक्ट होगा, पर वार्डनशिप छोड़ने को तो विवश किया ही जा सकता है।"12 यहाँ तक ही वह रुकती नहीं बल्कि इससे भी आगे जाकर वह मिसेज रायचौधरी से कहती है कि," हमें-आपको क्या करना है ? दो-तीन लड़कियों से प्रिंसिपल को चिट्ठी लिखवाना ही पर्याप्त है कि सुषमा वार्डन पद के लिए उपयुक्त नहीं। उसका आचरण अनैतिक है। प्रिंसिपल हम लोगों को बुलाकर पूछेंगी, क्योंकि हम

लोग भी यहीं रहते हैं, तो कह देंगे कि देखा तो हमने भी है।"13 यह कामकाजी नारी के षड्यंत्रकारी रूप को व्यक्त करता है। लगता है कि कामकाजी नारी आज अपने कर्तव्य के प्रति गैर जिम्मेदारी से कैसी चल रही है।

नारी का विद्रोही स्वर :-

उषा प्रियंवदा जी की रचनाओं में कहीं-कहीं मार्क्सवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। लेखिका की रचनाओं के नारी पात्र मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने अस्तित्व के लिए विद्रोह करते हुए दिखाई देते हैं। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' इस उपन्यास में सुषमा के माध्यम से एक विद्रोही विचारोंवाली आधुनिक नारी का रूप हमारे सामने आ जाता है। उपन्यास में सुषमा का षड्यंत्रकारी अध्यापिका के खिलाफ, लड़कियों के खिलाफ, प्राचार्य के खिलाफ तथा अपनी माँ के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ दिखाई देता है। उसने लड़कियों के प्रति कितना विश्वास एवं स्नेह रखा था लेकिन जब लड़कियों ने चुपचाप छिपकर सुषमा और नील को एकत्रित देखने का प्रयास किया तब लड़कियों के प्रति सुषमा का नील से कहना कि," मुझे दुख यह है नील, कि मैंने इन लड़कियों के लिए कितना किया। जब तक कि कोई बहुत आवश्यक न हो, मैं दंडित नहीं करती। उन्हें प्यार से समझाती हूँ, उनकी सुख-सुविधाओं का ख्याल रखती हूँ और उन्होंने मुझे यह दिया... मेरे कमरे में झांका..."14 यह लड़कियों के प्रति सुषमा के आक्रोश को ही व्यक्त करता है। जब मिस शर्मा तथा रोमा डेविड जैसी अध्यापिकाओं ने सुषमा के खिलाफ प्रिंसिपल के पास शिकायत की और प्रिंसिपल ने सुषमा को बुलाकर समझाया कि तुमसे यह उम्मीद नहीं थी। आपको मैंने बहुत गंभीर और जिम्मेदार समझा था। सबको सुनते हुए अब यही अच्छा होगा कि तुम अपने आप इस्तीफा दे दो। यह सब सुनकर सुषमा को बहुत बुरा लगता है। वह रोने लगती है लेकिन तुरंत वह आहत मन से यह सोचती है कि," नहीं रोऊँगी। मैं यहाँ से चली जाऊँगी। कहीं और नौकरी कर लूँगी, पर नील को अपने जीवन से दूर कर देना मेरे वश का नहीं।"15 वह अपने स्वयं के प्रति ही नहीं अपितु अपनी माँ के प्रति भी आक्रोश व्यक्त करती है। सुषमा तैंतीस साल की होने के बावजूद भी माँ उसकी शादी के बारे में कभी नहीं सोचती, लेकिन उससे छोटी निरुपमा की शादी को लेकर वह हमेशा चिंतित रहती है, इस बात को लेकर भी सुषमा के मन में पीड़ा है। उसे लगता है कि माँ मेरे बारे में क्यों नहीं सोचती। जब माँ निरुपमा को दिखाने के लिए सुषमा के पास दिल्ली आती है और वहीं पर सुभाष नामक लड़के से निरुपमा को दिखाने की रस्म पूरी होती है। उस समय माँ सुषमा की सारी निरुपमा को पहनाती है, जो नील कश्यप ने सुषमा को दी थी। सुषमा इस पर नाराज हो जाती है और उस दिन सुषमा न नई साड़ी पहनती है न कोई आभूषण। उसके इस बर्ताव को लेकर माँ जब उसे कहती है कि तुमने ऐसा बर्ताव क्यों किया, वह लोग क्या सोचते होंगे तब सुषमा का अपने मन की भड़ास निकालते हुए माँ से कहना कि," तुमने मुझे बहुत सारा गहना गढा दिया है न, जो पहन लेती। तुमने तो पहन ली थी न भारी-सी जंजीर - बस देख लिया होगा उन लोगों ने।"16 इस पर माँ नाराज होकर उल्टा सुषमा को यह करती है कि तू नीरू की शादी के लिए कुछ व्यवस्था क्यों नहीं करती यह फिजूल खर्च बंद कर तब सुषमा का माँ से कहना कि," जरा अपने दिल के अंदर झाँककर देखो कि तुमने मेरे लिए क्या किया है। मेरा आराम से रहना ही तुम्हें खटकता है। तुम शादी तय करो नीरू की, मैं अपने सारे गहने-कपड़े उठाकर दे डालूँगी। यही तो तुम

चाहती हो।"17 यह माँ के प्रति सुषमा के आक्रोश को व्यक्त करता है। पाठक भी यहां सोचने के लिए विवश हो जाता है कि यह कैसी माँ है, जो अपनी बड़ी बेटी की शादी को छोड़कर छोटी बेटी निरुपमा की शादी से चिंतित होती रहती है। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से हमारे सामने एक ऐसी स्वार्थी माँ को प्रस्तुत किया है, जो अपनी आर्थिक पूर्ति के लिए बड़ी बेटी सुषमा की शादी के बारे में न सोचकर छोटी बेटी निरुपमा की शादी के बारे में सोचती है। उसे डर है कि सुषमा की शादी हो जाए, तो अपने परिवार का आर्थिक स्त्रोत बंद हो जाएगा। माँ का यह स्वार्थी रूप देखकर पाठक निश्चित ही चिंतित होता दिखाई देता है।

स्वार्थपरायणता से मंडित रिश्ते :-

आधुनिक काल में अर्थ प्राप्ति के पीछे लगे लोगों के लिए रिश्ते दिन-ब-दिन गौण बनते जा रहे हैं। विकास या अर्थ प्राप्ति के दौड़ में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। वैयक्तिक और पारिवारिक रिश्तों में शिथिलता आ रही है। व्यक्तिवादी स्वार्थपरता के कारण रिश्तो में दरार आती जा रही है। इस उपन्यास में उषा प्रियंवदा जी ने सुषमा की माँ को इस रूप में चित्रित किया है कि वह अपनी संतानों के सुखद भविष्य के लिए अपनी बड़ी बेटी सुषमा, जो कमाऊँ है, उसके अरमानों को नजरअंदाज कर देती है। एक तरफ छोटी बेटी निरुपमा की शादी की बात बार-बार उठाती है, तो दूसरी तरफ माँ को सुषमा की शादी को लेकर सोचना उचित नहीं लगता। वह जानबूझकर सुषमा की शादी को टाल देना चाहती है, क्योंकि उसे लगता है कि सुषमा ब्याहकर चली गई तो उससे मिलने वाली तनख्वाह पर चलने वाले हमारे परिवार का क्या होगा ? यही स्वार्थ माँ और बेटी के बीच आ जाता है। माँ को हर समय अपनी छोटी बेटी निरुपमा की शादी की चिंता लगी रहती है। उसके आगे सुषमा का रहन-सहन, पहनने-ओढने का शौक खलने लगता है। सुषमा के रहन-सहन और सुख-सुविधा को देखकर उसे नसीहत देती हुई माँ कहती है कि," आखिर इतनी गृहस्ती फैलाने की जरूरत क्या है सुषमा ? भौंरी को निकाल दो और होस्टल के नौकरों से काम करवाओ। होस्टल में कुरसी-मेजें बनें तो घर के लिए कुछ सामान बनवा लो। पलँग है, अलमारी, खाने की मेजें- सब देने के काम आएगा- इतनी जमीन बेकार पड़ी है, साग-सब्जी लगाओ।"18 इतना ही नहीं नील के प्रति सुषमा का बढ़ता आकर्षण माँ के मन में खलने लगता है। उसे भविष्य में घटने वाली आशंकाओं से डर लगता है और वह बड़ी शालीनता के साथ सुषमा से कहती है देखो सुषमा ," तुम समझदार हो, कभी ऐसा कुछ न करना जिससे किसी को कुछ कहने का अवसर मिले। तुम्हारी वजह से अभी हम चार जनों में सिर ऊंचा करके रह रहे हैं..."19 यह सुषमा के वेतन पर निर्भर रहने वाली एक स्वार्थी माँ की मानसिकता को व्यक्त करता है।

बढ़ता हुआ अकेलापन और मानसिक घुटन :-

उषा प्रियंवदा जी ने इस उपन्यास में सुषमा के अकेलेपन और उसकी मानसिक घुटन को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में सुषमा एक पारिवारिक दायित्व की सीमाओं और आर्थिक विषमताओं में जकड़ी हुई नारी है। छात्रावास के पचपन खंभे लाल दीवारें उन परिस्थितियों को बयान करते हैं, जिनमें रहकर सुषमा घुटन और अकेलेपन को महसूस करती है। वह आर्थिक अभाव में पारिवारिक दायित्व और जिम्मेदारियों के बोझतले इतनी झुक गई है कि उसकी अपनी व्यक्तिगत आशा-आकांक्षाएँ तहस-नहस हो गई है। उसे अपने बारे में सोचनेवाला चिंतक कोई नहीं मिलता। परिवार में माता-पिता भी उसकी शादी को लेकर उपेक्षा करते हैं। इससे उसका अकेलापन

और भी बढ़ते जाता है। उसके जीवन में नील जब खुशियों की हरियाली लेकर आता है, तब कुछ समय के लिए वह स्वयं को उस अकेलेपन और घुटन भरी जिंदगी से निकालने का प्रयास करती है, लेकिन फिर उसपर अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियां और सामाजिक बंधन हावी हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप वह नील को कहती कि," नौ साल से मैं इस कॉलेज में हूँ नील, पर यहाँ लोग किसी को जीने नहीं देते। इसीलिए मैं तुमसे कह रही थी कि मेरी जिंदगी खत्म हो चुकी है। मैं केवल साधन हूँ। मेरी भावना का कोई स्थान नहीं। विवाह करके परिवार को निराधार छोड़ देना मेरे लिए संभव नहीं। मैंने अपने को ऐसी जिंदगी के लिए डाल लिया है। तुम चले जाओगे तो मैं फिर अपने को उन्हीं प्राचीरो में बंदी कर लूँगी।"20 इतना ही नहीं जब मीनाक्षी स्वयं शादी कर सुषमा को भी नील के साथ शादी करने की बात करती है तब वह उसके प्रस्ताव को नकारते हुए स्वयं की हताशा को व्यक्त करती हुई कहती है कि," उसे स्वीकार करने का शायद मुझमें साहस नहीं है। अपने को कमजोर पाती हूँ... आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी बेटी को लेकर इस कॉलेज में आओ, तब भी तुम मुझे यही पाओगी। कॉलेज के पचपन खंभों की तरह स्थिर अचल..."21 वह न नील को अपने मन से निकाल सकती है न उसके साथ विवाह करना चाहती है। उसका नील के जाने के बाद मन ही मन यह सोचना कि," नील के बगैर मैं कुछ भी नहीं हूँ, केवल एक छाया, एक खोए हुए स्वर की प्रतिध्वनि ; और अब ऐसी ही रहूँगी, मन की वीरानियों में भटकती हुई।"22 यह आकेलेपन से बनी सुषमा की हताशा और मानसिक घुटन को व्यक्त करता है। सुषमा नील के हालैंड जाते समय उसे विदा करने के लिए मीनाक्षी को टैक्सी लाने के लिए कहती है लेकिन जब टैक्सी दरवाजे पर आ जाती है, तब वह मीनाक्षी को कहती है, टैक्सी वापस कर दो मैं नहीं जाऊंगी। यहाँ लेखिका ने इस उपन्यास में सुषमा किस प्रकार अपने अकेलेपन से बनी मानसिक घुटन को लेकर जी रही है, इसे कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

नारी अस्तित्व का बोध :-

आधुनिक काल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है नारी को हुआ अपने अस्तित्व का पूरा परिचय। उषा प्रियंवदा जी ने अपने इस उपन्यास में अंकित करने का प्रयास किया है कि मध्यवर्गीय परिवार में आज किस प्रकार नारी पढ़-लिखकर अपने परिवार की जिम्मेदारियाँ बखूबी से निभा रही है। इतना ही नहीं समाज में अपने अस्तित्व को बनाए रखने का वह प्रयास भी कर रही है। वह जानती है कि जीवन में अपना भी कुछ अधिकार एवं दायित्व है और इसकी पहचान उसे इस आधुनिक शिक्षा और न्याय व्यवस्था ने दी है। उपन्यास में सुषमा एक ऐसी ही शिक्षित एवं आत्मनिर्भर नारी है, जो कठिन आर्थिक परिस्थितियों में भी स्वयं नौकरी करते हुए अपने माता-पिता तथा छोटे भाई- बहनों की संपूर्ण जिम्मेदारी का वहन करती है। इस जिम्मेदारियों को निभाते-निभाते उसे अपनी आकांक्षाओं का गला भी घोटना क्यों न पडे इसकी उसे परवाह नहीं है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह स्वयं पर हुआ अन्याय चुपचाप सकती है। यहाँ तक कि उसे अपनी माँ के विचार दोगले लगते हैं तब वह माँ के खिलाफ आक्रोश भी व्यक्त करती है। इतना ही नहीं उसका महाविद्यालय में स्वाति पर लांछन उठानेवाली अध्यापिका मिसेज पूरी को फटकारते हुए यह कहना कि," आपके सामाजिक मापदंड यह कहते हैं कि आप सबके सामने किसी के व्यक्तिगत जीवन की धज्जियां उड़ा दीजिए ? हरेक का जीवन एक ऐसा अनुलंघनीय दुर्ग है जिसका अतिक्रमण करना किसी

का अधिकार नहीं है।"23 इसके साथ- साथ मीनाक्षी का सुषमा को यह कहना कि," मैं अपने इस जीवन से बुरी तरह ऊब टटगई हूँ। लेक्चर्स और ट्यूटोरियल में बँधी हमारी संकुचित जिंदगी, छोटे-छोटे झगड़े, पर-निंदा- यह मेरा ध्येय न था। शायद तुम मुझे पलायनवादी कहो, पर जब एक द्वार मेरे सामने खुल रहा है तो मैं उससे क्यों न निकल भागूँ।"24 यह नारी अस्तित्व बोध को व्यक्त करता है। लेखिका ने बड़े कलात्मक ढंग से सुषमा हो या मीनाक्षी हो उनके माध्यम से नारी अस्तित्व बोध को उपन्यास में उजागर करने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार आधुनिक काल में नारी पढ़ लिखकर तथा कानून की सहायता से सुरक्षित हो गई है। वह प्रत्येक क्षेत्र में घर से बाहर जाकर नौकरी करने लगी है। उसने अपने अधिकार एवं दायित्व को पहचान कर अपनी क्षमता पर प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के बराबर अपना स्थान निश्चित किया है। वह आज हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। उषा प्रियंवदा जी ने अपने उपन्यास 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में नारी के विविध रूपों के माध्यम से आधुनिक समय में उनके आचारों-विचारों में आये बदलाव को रेखांकित करने का प्रयास किया है। जहाँ पहले नारी चार दीवारों में कैद थी, पुरुषों के दिखाए रास्ते पर चलना ही अपना कर्तव्य एवं नीयति मानती थी, वहाँ आज नारी को स्वयं की क्षमता के बारे में पहचान हुई है। वह परिवार का दायित्व एवं जिम्मेदारी निभाने के लिए आत्मनिर्भर हो गई है। जहाँ हमारे समाज में पहले परिवार का दायित्व बेटों पर रखा जाता था, बेटे ही उसके काबिल माने जाते थे, लेकिन आज बेटियों ने भी साबित किया है कि हम भी बेटों की तरह परिवार के पूरे दायित्व को भली-भांति और जिम्मेदारी के साथ निभा सकती हैं। इतना ही नहीं आज नारी अपने पर हो रहे अन्याय अत्याचार के खिलाफ लड़ रही है। साथ ही साथ अपने जीवन को लेकर स्वयं निर्णय लेने में भी व स्वतंत्र हो गई है। अपना जीवन साथी चयन करने का उसे अधिकार मिल गया है। उपन्यास में सुषमा भी अपने पारिवारिक जिम्मेदारियों को एवं दायित्व को बखूबी से निभा रही है। इस दायित्व में उसकी आशा-आकांक्षाएं तहस-नहस हो रही है, बावजूद इसके हताश होकर भी वह अपने भाई-बहनों तथा माता-पिता की सेवा में कोई कसर छोड़ती नहीं। सुषमा अपनी पारिवारिक जिम्मेदारी एवं सामाजिक बंधनों के बीच घुटन में जीते हुए छात्रावास के पचपन खंभे लाल दीवारों के बीच रहने के लिए विवश हो जाती है।

'पचपन खंभे लाल दीवारें ' इस उपन्यास का अध्ययन करने के पश्चात इस उपन्यास में व्यक्त आधुनिक बोध को लेकर निम्नलिखित निष्कर्ष बिंदु हमारे सामने आते हैं। जैसे -

- लेखिका ने यहाँ सुषमा को आदर्श और यथा के बीच पिसती हुई नारी के रुप में चित्रित किया है। सुषमा के लिए अपने परिवार की जिम्मेदारी निभाना एक आदर्श है, तो अपनी आशा- आकांक्षाओं की पूर्ति करना एक यथार्थ है।

1. भारतीय समाज में जहाँ परिवार की जिम्मेदारी का वहन करने की क्षमता केवल लड़कों तथा पुरुषों में मानी जाती थी, वहाँ आज पढ़ लिख कर लड़कियों ने लड़कों से भी एक कदम आगे जाकर परिवार की जिम्मेदायाँ एवं दायित्व निभाने की अपनी क्षमता को साबित किया है।

- समाज में आज भी बच्चे का नामकरण, विवाह में लड़की दिखाने की रस्म तथा दहेज

जैसी पारंपारिक परंपराओ का निर्वाहण हो रहा है।

1. आज कामकाजी नारी ने एक तरफ अपनी कर्मनिष्ठा के आधार पर स्वयं को पुरुषों के बराबर साबित किया है, तो दूसरी तरफ अपने स्वार्थी एवं षड्यंत्रकारी रूप से समाज को चिंतित भी कर दिया है।
2. इस उपन्यास में एक स्वार्थी माता का रूप हमारे सामने आता है, जो अपने परिवार का आर्थिक स्त्रोत बंद न हो जाए इसीलिए नौकरी करनेवाली अपनी बड़ी बेटी की शादी के बारे में न सोच कर छोटी बेटी की शादी करना चाहती है। यह माँ का स्वार्थी रूप शायद परिवार की आर्थिक व्यवस्था के कारण सामने आया है, अन्यथा माँ का यह रूप हमारे इतिहास में कहीं भी नहीं दिखाई देता।

- वैचारिक भिन्नता के कारण आज पुरानी पीढ़ी और आधुनिक पीढ़ी में वैचारिक टकराव की स्थिति उत्पन्न हो रही है।
- स्वच्छंद जीवन जीने की लालसा में कहीं-कहीं नारी का दूसरों के प्रति ईर्ष्या से भरा एवं षड्यंत्रकारी रूप भी दिखाई दे रहा है।

1. अन्याय- अत्याचार के खिलाफ नारी का विद्रोह भरा स्वर समता एवं विकास की दिशा दिखाने में सहायक साबित हो रहा है।

- समानता का अधिकार पाने के बावजूद तथा आज के विकसित युग में भी अकेलेपन और मानसिक घुटन की पीड़ा को सहने के लिए पुरुष एवं नारी पात्र विवश हो रहे हैं।

कुल मिलाकर उषा प्रियंवदा जी ने अपने इस उपन्यास में नौकरी करनेवाली नारी पारिवारिक जिम्मेदारी निभाते- निभाते अपनी इच्छा-आकांक्षाओं की पूर्ति करने में कैसे विफल हो रही है और ऐसे में पारिवारिक, नैतिक मूल्य और सामाजिक बंधनों के कारण वह घुटन भरी मानसिकता में जी रही है इसे सुषमा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने स्वतंत्र नारी का रूप, स्वार्थ परायणता से मंडित रिश्ते, स्वार्थी मां का रूप,अकेलेपन एवं मानसिकता की घुटन में जीने की विवशता, स्वछंद जीवन जीने की लालसा, आत्मनिर्भर नारी, दो पीढ़ियों के बीच वैचारिक संघर्ष आदि कई वैचारिक बिंदुओं को पाठकों के सामने रखने का सफल प्रयास किया है।

संदर्भ सूची :-

1) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.11
2) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.34
3) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.36
4) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.11
5) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.09
6) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.33
7) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.10
8) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.13
9) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.56
10) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.57
11) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.27

12) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962,राजकमल प्रकाशन,दिल्ली - पृ.81-82
13) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.82
14) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.95
15) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.102
16) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.78
17) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.79
18)उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें- पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-पृ.78-79
19)उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.84
20)उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962,राजकमल प्रकाशन, दिल्ली- पृ.56-57
21)उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.100
22) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.111
23) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ. 27
24) उषा प्रियंवदा - पचपन खंभे लाल दीवारें - पहला संस्करण 1962, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - पृ.38

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com